युवा कंधों पर यकीन की पालकी

प्रफुल्ल कोलख्यान

'लौट जाती है इधर को भी नज़र क्या कीजे / अब भी दिलकश है तेरा हुस्न मगर क्या कीजे ?/ और भी दुख हैं ज़माने में मुहब्बत के सिवा / राहतें और भी हैं वस्ल की राहत के सिवा / मुझ से पहली सी मुहब्बत मेरी महबूब नः माँग'

-फैज़ अहमद फैज़

(मुझ से पहली सी मुहब्बत मेरी महबूब नः माँग)

शक्ति, उत्साह, आनंद, त्याग जैसे श्रेष्ठ मूल्य मानव सभ्यता की जययात्रा में सदैव साथी रहे हैं। इन मूल्यों की प्राणधारा के स्रोत युवा-शक्ति से ही फूटते हैं। यह सच है कि सभ्यता के सारे मूल्यवान कार्य युवावस्था के लोगों ने ही संपन्न नहीं किया है। लेकिन जिस किसी अवस्था में लोगों ने महत्त्वपूर्ण काम किया उसी को युवावस्था माना गया। अंग्रेजी सेना के खिलाफ जमकर लोहा लेने के लिए बाबू कुँवर सिंह को अस्सी वर्ष का युवा कहा गया। यौवन का उत्साह ही है जो किसी देवदत्त को भीष्म और किसी को ययाति बना देता है। रावण का ही नहीं पशुराम का भी पराभव युवा राम के हाथ से होता है। चिर यौवन ही कृष्ण को भारत का नायक बनाये रखता है। दुख का एक बड़ा कारण 'जरा' को माननेवाले सिद्धार्थ की उम्र क्या थी ? सभ्यता को एक नये आलोक से परिचित कराते समय ईसा और मुहम्मद साहब की ही उम्र क्या रही होगी ? विवेकानंद का उदाहरण सामने है। उदाहरण अनेक हैं ! यह सच है कि भारत की आजादी के आंदोलन के महानायक महात्मा गाँधी ने युवावस्था में भारतीय राजनीति में प्रवेश नहीं किया लेकिन उनकी राजनीति की प्रभा में उस समय के युवा रक्त की ही लालिमा दौड़ रही थी। देखने की बात यह है कि जैसे-जैसे पुरानी पीढ़ी का वर्चस्व आजादी के आंदोलन पर कम होता गया आंदोलन के तापक्रम में वृद्धि होती गई।

मनुष्य की प्रतिभा उन्मेषी होती है। उन्मेष के लिए अन्वेषण जरूरी होता है। मनुष्य स्वभाव से ही अन्वेषी होता है। अन्वेषण का अपना आनंद होता है। अन्वेषण का आनंद यौवन का बुनियादी अधिकार होता है। आज के युवाओं के सामने सबकुछ इतना खुला हुआ **(exposed)** है कि वह उद्घाटित **(reveal)** करने के आनंद से बंचित है — विडंबना यह कि जिसे उद्घाटित करने में आनंद की जितनी अधिक संभावना होती है वह उतना ही खुला हुआ है ! बच्चा जल्दी-से-जल्दी जवान होना चाहता है। जवान कभी बूढ़ा होना नहीं चाहता! जवानी की 'दवा' बेचनेवाले जोर-जोर से कहते हैं कि उनकी 'दवा' बच्चा खाये तो जवान हो जाये, यह नहीं कहते कि जवान खाये तो बूढ़ा हो जाये! कहते हैं कि जवानी जाकर आती नहीं बुढ़ापा आकर जाता नहीं!

यह दौर युवाओं का है। इक्कीसवीं सदी के प्रारंभ से ही एक ऐसा सामाजिक माहौल बनना शुरू हुआ कि चारों तरफ युवा भावनाओं को तरजीह दी जाने लगी। संचार और सूचना के फैलाव ने इस तरह की मूल्य निर्मिति को बल पहुँचाया कि पुराने के प्रति दुराव का भाव सहज बनने लगा। किसी भावना, अनुभव, वस्तु या स्मृति को सहेजना-सँजोना सभ्यता के सिर पर फालतू का बोझ बनने लगा। बाजार की आँख से यह बात छिपी नहीं है कि महात्मा गाँधी जैसे 'अधनंगे फकीर' का नायक बने रहना बाजार के लिए शुभ नहीं हो सकता! आजीवन दांपत्य का टिके रहना भी बाजार के लिए शुभ नहीं है! 'यूज एंड थ्रो' अर्थात 'भोगो और भूलो' युग का सबसे लोकप्रिय युवा मुहावरा बन रहा है। 'टिकाऊपन' का कोई बोध नहीं बच पा रहा है। आवरण जिसे रैपर कहते हैं आकर्षण का पहला आधार बना है। ऐसा नहीं कि अंतर्वस्तु की गुणवत्ता की कोई परवाह ही नहीं रही, परवाह है लेकिन रैपर में है!

भारत में इधर मध्यवर्ग का आकार बढ़ा है। इनके चरित्र में भी तात्त्विक अंतर आया है। 'इंडिया अनबाउंड' में गुरूचरण दास ने पुराने और नये मध्यवर्ग के चरित्र में बदलाव को दर्शाते हुए कहा है कि पुराने मध्यवर्ग के आधार में शिक्षा और प्रतिभा थी जबकि नये मध्यवर्ग के आधार में पैसा है। अस्सी साल पहले इसके आदर्श राष्ट्रवादी गोपाल कृष्ण गोखले और लोकमान्य बालगंगाधर तिलक थे। पचास साल पहले तक महात्मा गाँधी और जवाहरलाल नेहरू थे। आज के आदर्श कारोबार का साम्राज्य खड़ा करनेवाले अंबानी और अजीम प्रेमजी हैं। इस टिप्पणी में जितनी सच्चाई है उससे कहीं ज्यादा बाजार की आकांक्षा है। प्रेमचंद हमारे महत्त्वपूर्ण साहित्यकार हैं। उनके साहित्य में दुख बहुत है। इस पर अलग से विचार किया जा सकता है। लेकिन प्रेमचंद के कथा को समझने का एक महत्त्वपूर्ण सूत्र उनके पात्रों की औसत उम्र को मानने का संकेत करना प्रासंगिक है। आजादी के आंदोलन में युवाओं की भागीदारी कैसी थी ? अप्रैल 1930 में टिप्पणी करते हुए प्रेमचंद ने लिखा था कि 'इस लड़ाई ने हमारे कॉलेजों और युनिवर्सिटियों की पोल खोल दी। हमने आशा की थी कि जैसे अन्य देशों में ऐसी लड़ाइयों में छात्रवर्ग प्रमुख भाग लिया करते हैं, वैसे यहाँ भी होगा; पर ऐसा नहीं हुआ। हमारा शिक्षित समुदाय, चाहे वह सरकारी नौकर हो, या वकील, या प्रोफेसर, या छात्र सभी अंग्रेजी सरकार को अपना इष्ट समझते हैं और उनकी हड्डियों पर दौड़ने को तैयार रहते हैं। प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि निन्यानबे सैकड़े ग्रेजुएटों के लिए सभी द्वार बंद हैं; पर निराशा में भी आशा लगाये बैठे हैं कि शायद हमारी ही तकदीर जग जाये। देख रहे हैं, कि कांग्रेस के आंदोलन से ही अब थोड़े-से ऊँचे ओहदे हिंदुस्तानियों को मिलने लगे हैं, फिर भी राजनीति को हौआ समझ बैठे हैं। या तो उन में साहस नहीं, या शक्ति नहीं, या आत्मगौरव नहीं, उत्साह नहीं। जिस देश के शिक्षित युवक इतने मंदोत्साह हों, उसका भविष्य उज्ज्वल नहीं कहा जा सकता।' आज के शिक्षित लोगों के रवैये से इसे मिलाकर देखें तो कैसा निषकर्ष हासिल होगा! अनुमान बहुत कठिन नहीं है। यह तो हर कोई मानेगा कि युवा शक्ति का सभ्यता निर्माण में निर्विवाद योगदान होता है। लेकिन आज की शिक्षित युवा शक्ति में अपने दायित्व को समझने और उसे पूरा करने की कितनी ललक बाकी है! अपवाद हैं, लेकिन अपवाद तो अपवाद ही होते हैं। सारा दोष युवाओं को देना अन्याय है। कहना न होगा कि युवावर्ग दी हुई परिस्थिति में आँख खोलता है; साँस लेता है, बदलने की कोशिश करता है और खुद अपने को भी बदलता है। बहुत जोर देकर पूछो तो आज का युवा अपनी जुबान भले बंद रखे आँखों से फ़ैज के शब्दों को दुहरा देता है — 'क्यूँ मेरा दिल शाद नहीं है / क्यूँ खामोश रहा करता हूँ / छोड़ो मेरी रामकहानी / मैं जैसा भी हूँ अच्छा हूँ'।

मनुष्य के वास्तविक आत्मबल का स्रोत उसके नैतिक होने में है। इस आत्मबल का दूसरा नाम नैतिक साहस है। युवा वर्ग के आत्मबल का रहस्य भी उनके नैतिक साहस में होता है । नैतिक साहस कोई बनी-बनाई नहीं मिलती है। इसे भी अन्य सदगुणों की तरह अर्जित करना पड़ता है। युवाओं के पास इसे अर्जित करने के बहुत सारे अवसर होते हैं। कहना न होगा कि किसी सदगुण को अर्जित करना ही काफी नहीं होता है, उसे टिकाये भी रखना पड़ता है। जो व्यक्ति इस नैतिक साहस को जितनी अधिक मात्रा में जितनी देर तक टिकाये रखता है वह व्यक्ति उतने दिन तक युवा बना रहता है। सामान्यतया यहाँ तक हर विवेकवान आदमी सहमत होता होता है। असहमति का पिटारा नैतिकता के स्वरूप और नैतिकता की संरचना को लेकर खुलता है। जाहिर है सभ्यता में नैतिकता के कई पाठ हैं। प्रसंगवश, यहाँ कुछ अति महत्त्वपूर्ण पाठों की चर्चा की जा सकती है। आधुनिक 'राष्ट्रवाद' के उदय के साथ नैतिकता का एक पाठ देशप्रेम के माध्यम से बना। राष्ट्र के साथ व्यक्ति और समुदाय के समतामूलक संबंध को सुनिश्चित करने की व्यापक आकांक्षा और इस दशा में गंभीर प्रयास के बिना फैलाया गया राष्ट्रवाद कुत्सित और भ्रामक होता है। ऐसा राष्ट्रवाद आर्थिक शोषण तो करता ही है देशप्रेम की नैसर्गिक भावनाओं को भी छले जाने का आधार मुहय्या करता है।

नैतिकता का एक पाठ धर्म बनाता है। धर्म — सभी मनुषयों के — कम-से-कम अपने माननेवालों के समान होने का दावा करता है। 'धर्म' समानता का चाहे जितना दावा करे, उसकी अपनी मूल्य संरचना

में असमानतओं का सदावास होता है। धर्म के सबसे निचले पायदान पर होता है 'फटा सुथन्ना' पहने रघुवीर सहाय का अशक्त 'हरिचरना' और सबसे ऊँचे पायदान पर होते हैं 'शंख, चक्र, गदा और कमल' धारण किये सर्वशक्तिमान 'हरि'। अशक्त हरिचरना और सर्वशक्तिमान हरि के विस्तार तक फैला 'धर्म' अपने स्वभाव से ही विषमता का पोषक होता है। धर्म के मूल्यों में अंतर्निहित वैयक्तिक और लैंगिक विषमता के तत्त्व का विस्तार सामाजिक और आर्थिक सहित विभिन्न प्रकार की विषमताओं के लिए सभ्यता में स्पेस बनाता है। धर्म का 'नैतिक आग्रह' विषमता के विष को मधुर बनाता है। मधुर बनाने की अपनी इसी क्षमता के कारण 'धर्म' विभिन्न प्रकार की विषमताओं को बनाये रखकर अपना हित साधनेवाले 'राज' और 'राष्ट्र' के लिए उपयोगी होता है। इसका दूसरा पहलू यह है कि विषमताओं से लड़नेवाली किसी भी व्यवस्था के लिए 'धर्म' के साथ अनिवार्य संघर्ष में उतरना पड़ता है। 'धर्म' के साथ इस अनिवार्य संघर्ष में उतरते ही विषमतारोधी व्यवस्था यह तथ्य अक्सर भूल जाती है कि 'धर्म' का प्राण 'राज' में नहीं समाज में बसता है। इसलिए 'धर्म' के साथ होनेवाला यह अनिवार्य संघर्ष 'राज' के साथ संधर्ष न होकर समाज के साथ संघर्ष में बदल जाता है। 'राज' के प्राणाधार 'आर्थिक' संरचना तक इस संघर्ष की आँच पहुँच ही नहीं पाती है।

विषमतारोधी व्यवस्था धर्म के लोक-पक्ष का महत्त्व ठीक से नहीं समझ पाती है। भारतीय अनुभव में धर्म और भक्ति का अंतर रहा है। बहरहाल 'धर्म' अगर 'नीति' है तो राजधर्म असल में राजनीति ही है। देखा जा सकता है कि इस राजनीति के तहत ही राष्ट्र-प्रेम को धार्मिक प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्ति मिलने लगती है। राष्ट्र-प्रेम बड़ी सूक्ष्मता से राष्ट्र-भक्ति में बदल जाती है। यह बात समझी जा सकती है कि क्यों और कैसे पुराने धर्म और नये राष्ट्र के नैतिक आधार मिल जाते हैं। नैतिकता अपना अनुमोदन धार्मिक मान्यताओं और आसमानी किताबों से प्राप्त करती है। राष्ट्र को अपनी वैधानिकता संविधान से प्राप्त होती है। वैधानिकता और नैतिकता में असमंजस की स्थिति उत्पन्न होने पर वैधानिकता अक्सर निष्प्रभ हो जाती है। नैतिकता का सर्वाधिक महत्त्व यौन-संदर्भों से तय होता है। 'धर्म', 'कुत्सित राष्ट्रवाद' और 'यौन संदर्भों' पर अतिकेंद्रन के कारण रोजी-रोटी, आधिकारिकता, अवसर की समानता, वैज्ञानिक सचेनता, मानवता के साझेपन और पर्यावरणीय अक्षुण्णता से नैतिकता को जोड़ना लगभग असंभव हो जाता है। महाभारत भारतीय संस्कृति का महा-आख्यान है। महाभारत के यक्ष प्रसंग में बताया गया है कि जिस पथ का अनुगमन महाजन करते हैं वही पथ श्रेष्ठ होता है — महाजन अर्थात नायक और श्रेष्ठ अर्थात नैतिक। इस दौर में अभिनेता **(Actor)** ही नायक **(Hero)** हो गये हैं। कहना न होगा कि हमारा दौर न नायकों का है और न खलनायकों का है — यह तो छलनायकों का दौर है। इस दौर के युवाओं की नैतिक दशाओं का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। इतिहास से भरोसा प्राप्त करते हुए माना जा सकता है कि आज के युवाओं के भीतर से ही नए नायकों का जन्म होगा। ऐसे नायकों का जन्म जो रोजी-रोटी, आधिकारिकता, अवसर की समानता, वैज्ञानिक सचेनता, मानवता के साझेपन और पर्यावरणीय अक्षुण्णता से नैतिकता को जोड़कर नवनैतिकता का आधार तैयार करेगा। क्योंकि युवा आँखों में नैसर्गिक रूप से नैतिक समाज का सपना होता है। रवींद्रनाथ ठाकुर के शब्दों में कहें तो, एक ऐसे समाज का सपना 'जहाँ चित्त भय शून्य हो, जहाँ सिर ऊँचा हो, जहाँ ज्ञान मुक्त हो'। आज युवाओं के सामने न तो सम्मानजनक रोजगार की संभावनाएँ उभर रही हैं और न सच्चे इश्क की**!** एक नैतिक समाज में ही सम्मानजनक रोजगार और सच्चा इश्क हासिल हो सकता है। युवा आँखों में होती है इश्क और रोजगार की नैसर्गिक तलाश। युवा आँखों की यह नैसर्गिकता खोती जा रही है। युवा आँखों की यह नैसर्गिकता लौटेगी जरूर — आज नहीं तो कल। आज के युवाओं के सामने बच निकलने का रास्ता ही कहाँ है**!** गालिब को याद करें तो, 'गम अगरचे जाँगुसिल है, प कहाँ बचें, कि दिल है **:** ग़म-ए-इश्क न होता ग़म-ए-रोजगार होता'। 'ग़म-ए-इश्क' और 'ग़म-ए-रोजगार' से जूझते हुए युवाओं की नैसर्गिक क्षमता सभ्यता की ऐसी अंधी गली में फँसती नजर आ रही है जिसमें, फैज़ अहमद फ़ैज के

शब्दों में कहें तो 'चली है रस्म के: कोई न सर उठा के चले, जो कोई चाहनेवाला तवाफ़ (परिक्रमा) को निकले, नजर चुरा के चले जिस्म-ओ-जाँ बचा के चले'।

युवा मन का खास गुण है — कर्मठता। कर्मठता कभी हताश नहीं होती। कर्मठता के अंतर्मन में उजले दिन के आने के भरोसा का सदावास होता है। इसी कर्मठता ने वीरेन डंगवाल की कविता में अपना मन खोला है, 'आयेंगे उजले दिन जरूर आयेंगे // आतंक सरीखी बिछी हुई हर ओर बर्फ / है हवा कठिन ठिठुराती / आकाश उगलता अंधकार फिर एक बार / संशय-विदीर्ण आत्मा राम की अकुलाती // होगा वह समर, होगा अभी कुछ और बार / तब कहीं मेघ ये छिन्न-भिन्न हो पायेंगे // तहखानों से निकले मोटे-मोटे चूहे / जो लाशों की बदबू फैलाते घूम रहे / हैं कुतर रहे पुरखों की सारी तस्वीरें / चीं-चीं, चिक्-चिक् की धूम मचाते घूम रहे / पर डरो नहीं, चूहे आखिर चूहे ही हैं, जीवन की महिमा नष्ट नहीं कर पायेंगे। // यह रक्तपात, यह मारकाट जो मची हुई / लोगों का दिल भरमा देने का जरिया है / जो अड़ा हुआ हमें डराता रस्ते में / लपटें लेता घनघोर आग का दरिया है/ सूखे चेहरे बच्चों से नकी तरल हँसी / हम याद रखेंगे पार उसे कर जायेंगे / मैं नहीं तसल्ली झूठ-मूठ की देता हूँ / पर सपने के पीछे सच्चाई होती है / हर दौर कभी तो खत्म हुआ ही करता है। /हर कठिनाई कुछ राह दिखा ही जाती है // आये हैं जब चलकर हम इतने लाख वर्ष / इसके आगे भी तब चलकर जायेंगे, / आयेंगे, उजले दिन जरूर आयेंगे।' यकीनन उजले दिन की पालकी युवा कंधों पर ही सजती है।